फुरने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा,
भुली भवनि पाणही, चरिया चौरासी,
सामी बचियो को साध संगि, विरलो वेसाही,
अलखु अबिनासी, घिरी लधो जंहिं घर में.

सामी साहब कहते हैं कि संसार के जीव (मनुष्य) व्यर्थ के विचारों, भ्रमों संशयों में फँस गये हैं। अज्ञानी, नासमझ जीव चौरासी लक्ष योनियों में भटक रहे हैं। किन्तु संसार में विरला कोई ऐसा जीव (मनुष्य) होगा, जिसने पूर्ण विश्वास के साथ साधु-संत का संग किया होगा और अगोचर, अविनाशी परमेश्वर (ब्रह्म) को अपने घर (मन) में ढूँढ लिया होगा। परमेश्वर को प्राप्त किया होगा।

मनुष्य जन्म लेता है। बड़ा हो जाने पर वह माया अथवा अविद्या के कुचक्र में फँस जाता है। जीव के सहज छह वैरी (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) उसे घेर लेते हैं। वह अपने मूल स्वरूप ('अहं ब्रह्मास्मि।'= मैं ब्रह्म हूँ।) को भुला देता है । अपने शरीर/देह को ही सब कुछ समझ कर 'मैं कर्ता, मैं भोक्ता, मैं सुखी' कहते हुए वह अनेक भ्रमों में पड़कर व्यवहार करता रहता है। वह भूल गया है कि सच्चा सुख और संतोष या आनंद तो मेरे भीतर ही है। आत्मज्ञान के अभाव में उसका मन बाह्य पदार्थों एवं विषयों की ओर उन्मुख होता रहता है। वस्तुत: आत्माराम हमारे अंत:करण में है और उसी की अनुभूति करना हमारा कर्तव्य होता है। किन्तु यह अनुभूति तब होगी, जब हमारा मन भ्रम-भ्रांतियों से मुक्त होगा।

अज्ञानी या मूर्ख मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को न पहचान कर माया और मोह के बंधनों एवं संशय-भ्रमो में उलझ कर अपना सारा जीवन व्यर्थ ही गँवा देते हैं। ऐसे लोग चौरासी लक्ष योनियों में भटकते रहते हैं। उन्हें मुक्ति नहीं मिलती। कोई मनुष्य जब किसी सच्चे साधु-संत में दृढ़ विश्वास रख कर शरण में जाता है, उसे ही आत्मज्ञान के पश्चात् परमेश्वर को पाने का मार्ग मिल जाता है। सत् शिष्य को सतगुरु ही परमार्थ रूपी आत्मविद्या का बोध कराते हैं. सतगुरु ही उसे उसी के हृदय में निर्गुण निराकार परमेश्वर की प्रतीति कराते हैं। फलस्वरूप सत् शिष्य धन्य हो जाता है और फिर मोक्ष मुक्ति का अधिकारी बन जाता है। वह जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाता है। संत तुलसीदास के शब्दों में-

तुलसी सतगुरु के अहहिं, आनंदमय उपदेश।
संसय रोग नसाय सब, पावै पुनि न कलेस॥

■